ISSN: 2582-7162
शोध-पत्र

संस्कृत वाङ्.मय में शब्द शक्ति -अर्थ एवं स्वरूप

डॉ. ज्योति जोशी

संस्कृत विभागाध्यक्ष, एस.एस. जैन सुबोध गर्ल्स पी.जी. कॉलेज,
सांगानेर, जयपुर

Corresponding Author:
डॉ. ज्योति जोशी
संस्कृत विभागाध्यक्ष
एस.एस. जैन सुबोध गर्ल्स पी.जी. कॉलेज,
सांगानेर, जयपुर

Received 2022 Jan. 21, Accepted 2022 Feb. 19, Published - 2022 March. 04

रसिक मन सुन्दर काव्य-रचना को सुनता है और रसविभोर हो 'वाह-वाह' कर उठता है। वास्तव में कवि की प्रतिभा और उसकी अनुपम कल्पिना ही यह चमत्कार प्रस्तुत करती हैं, परन्तु प्रतिभा और कल्पना तो कवि के अन्तर्जगात् की वस्तुत है। ब्राह्य जगत पर अपना प्रभाव डालने के लिए आवश्यकता पड़ती है किसी सुन्दर की माध्यम की। वह माध्यम है- अभिव्यक्ति। अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करना प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव होता है। ''सहज भावनाओं का स्वाभाविक उद्रेक ही कविता है।[1] भाषा स्वीय अर्थात् अपने अर्थ वाक्य पर आधारित होती है और वाक्य शब्द पर। सार्थक शब्द रसयुक्त वाक्य निर्मित करके ही काव्य-सर्जना करते हैं।
आचार्य मम्मट ने ऐसे शब्दार्थ युगल को काव्य कहा है जो दोषरहित गुणसहित तथा प्राय: अलङ्.कृत भी होते हैं।[2]
''तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्.कृती पुनः क्वापि''

शब्द- शक् धातु में क्तिन् प्रत्यय के योग से शक्ति बनता है। इस व्युत्पत्ति के आधार पर शक्ति शब्द सामर्थ्य और बल का पर्यायवाची निश्चित होता है। कार्योत्पादक तत्त्व या सामर्थ्य के अर्थ में भी शक्ति शब्द का अर्थ किया जाता है। विजय प्राप्त कराने वाली ताकत के रूप में भी शक्ति शब्द का अर्थ किया गया है- यथा दुर्गा, शास्त्र एवं मन्त्रसिद्धि आदि। शक्ति के इन विविध रूपों एंव आश्रयों के अतिरिक्त शब्द और अर्थ के पारस्परिक सम्बन्ध में निहित शक्ति भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत काव्यशास्त्र में इसे शब्दशक्ति कहा गया है।

अर्थ:- शब्द में विद्यमान अर्थ को व्यक्त करने वाली क्रिया या व्यापार ही शब्द शक्ति है। कारण जिसके द्वारा कार्य करता है। उसे शक्ति कहा जाता है। अर्थ का बोध शब्द के द्वारा होता है और अर्थबोध की क्रिया या व्यापार लक्षणा, व्यंजना है।[3] प्राचीन आचार्यों ने इन्हीं को शक्ति, तात्पर्य या वृत्ति नाम दिया है।

जिस प्रकार किसी वस्तु के गुण-अवगुण का पता उसके प्रयोग या क्रिया द्वारा ही लगता है, उसी प्रकार शब्द की शक्ति उसकी अर्थोद्घाटनपरक क्रिया में है। किसी शब्द का ध्वन्यात्मक या अर्थात्मक प्रभाव प्रयोक्तासापेक्ष है। उदाहरणके लिए-वस्त्र निर्माण के लिए तन्तु जुलाहा एवं आवश्यक औजार होने पर भी जब तक ये सभी क्रियारत न होंगे वस्त्र नहीं बनेगा। अत: शब्द का अर्थ की ओर व्यापार या क्रिया ही शक्ति है।

शब्द के स्वरूप को लेकर प्रसिद्ध तीन मत प्रतिष्ठित है:-

(1) न्यायिक - न्यायशास्त्र में शब्द और अर्थ का सम्बन्ध सांकेतिक माना गया है। उसे ईश्वरेच्छा पर निर्भर भी रखा है। शब्द गुण है और अनित्य है उसमें द्रव्य के तीन तत्त्वों में से केवल दो हैं-उत्पाद और व्यय। भाषा परिवर्तनशील है, उसमें नये शब्द और अर्थ निरंतर आते ही रहते हैं अत: ईश्वर ने जब वाणी आरम्भ की होगी तब से आगे मानव ने लाखों नये शब्द बनाये ही है। अत: स्पष्ट है कि शब्द अनित्य एवं सांकेतिक है। नैयायिकों का ''वीची तरंग न्याय''[4] इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध है।

(2) मीमांसक :- मीमांसक नित्यवादी हैं इनके अनुसार शब्द भाव या गुण न होकर द्रव्य हैं शब्द भौतिक हैं क्योंकि शरीर से उत्पन्न होता है। शब्द केवल प्रकाशन का साधन हैं। अत: शब्द वाणी और ध्वनि की सत्ता के स्तर पर भले ही सिद्धान्तत: नित्य मान लिया जाये, पर व्यवहार एवं अर्थ के स्तर पर वह परिवर्तनशील एवं अनित्य ही है।

(3) वैयाकरण- वैयाकरण शब्द को स्फोटात्मक एवं नित्य मानते हैं। शब्द को सामान्य या साधारण न मानकर शब्द ब्रह्म के रूप में नित्य एवं सर्वव्यापी माना है। स्फोट शब्द का अर्थ किया गया है- ''स्फुटत्यर्थोऽस्मादिति स्फोटः'' अर्थात् जिससे अर्थ स्फुट होता है उसे स्फोट कहते हैं।

शब्द शक्ति के भेद- शब्द का अर्थ ग्रहणस करने में वक्ता, श्रोता एवं शब्द का योग होता है तथापि शब्द ही वक्ता एवं श्रोता के मध्य अर्थप्रेषण एवं अर्थग्रहण के माध्यम है और दोनों में सम्पर्क स्थापित कराते हैं। शब्द की मुख्यता होने के कारण ये शक्तियां तीन प्रकार की है- अभिधा, लक्षणा, व्यंजना। कतिपय विद्वान तात्पर्य नाम की चौथी शब्द शक्ति भी मानते हैं।[5]

1. अभिधा- सांकेतिक अर्थ का बोध कराने वाली शब्द की पहली शक्ति अभिधा हैं व्याकरण, शब्दकोश एवं सामान्य लोक-व्यवहार में प्रसिद्ध अर्थ मुख्य अर्थ कहलाता है।[6] सांकेतिक अर्थ के अन्तर्गत गुण, जाति, द्रव्य तथा क्रिया का ग्रहण होता है। इनका बोध कराने वाले व्यापार को अभिधा शक्ति कहा जाता है। जैसे गो शब्द का सास्नादिमान् अर्थ में संकेतग्रह होने के पश्चात् गो शब्द से संकेतिक गो रूप अर्थ की प्रतीति होती है। इस प्रतीति का जनक, शब्द का व्यापार अभिधा शक्ति कहालाता है।[7]
2. लक्षणा- मुख्य अर्थ का बोध होने पर और उसके साथ सम्बन्ध होने पर रूढ़ि या प्रयोजन से जिस वृत्ति के द्वारा अन्य अर्थ की प्रतीति होती है वह कल्पित वृत्ति लक्षणा कहलाती है।[8]

लक्षणा में तीन बातें मुख्य है:-

मुख्यार्थ बाध, मुख्यार्थ योग तथा रूढ़ि अथवा प्रयोजन ये तीनों लक्षणा के हेतु हैं मम्मट ने 25 सूत्र की व्याख्या में स्वयं ही कहा है- ''मुख्यार्थबाधादित्रयं हेतुः''[9]

मुख्यार्थ बाध का अभिप्राय यह है कि शब्द का जो वाक्यार्थ है वह अनुपपन्न हो जाये। किन्तु यह अर्थ मानने पर 'काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्' इत्यादि में लक्षणा न होगी क्योंकि यहाँ वाच्यार्थ है। ''कौओं से दही की रक्षा करना'- इस अर्थ में अन्वय बन ही रहा है अन्वयानुपपत्ति नहीं।

मुख्यार्थ योग- शब्द से जिस अन्य अर्थ की प्रतीति होती है उसका मुख्य अर्थ से सम्बन्ध होता है। रूढ़ि अर्थात् प्रसिद्धि के कारण शब्द में अमुख्य अर्थ की प्रतीति होती है और कहीं किसी विशेष प्रयोजन को ध्यान में रखकर लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

मम्मटकृत संक्षेप में लक्षणा के 6 भेद इस प्रकार है :-

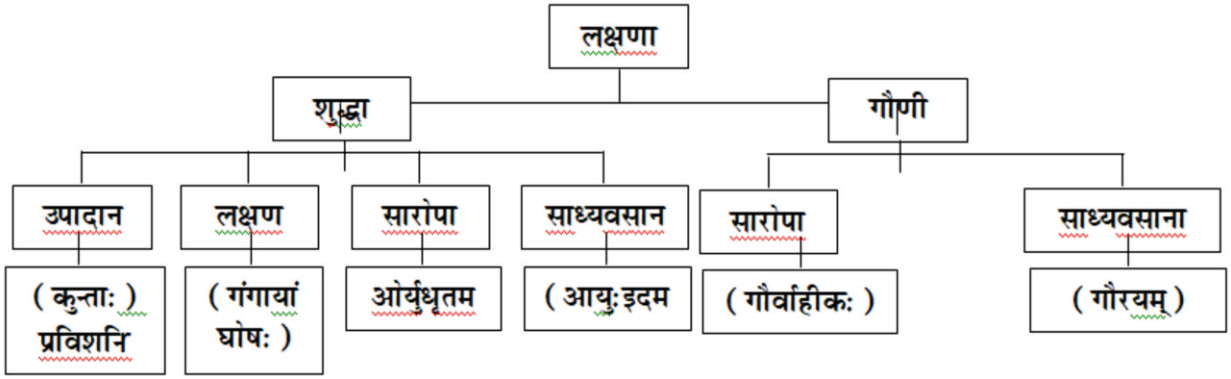

व्यंजना का लक्षण मम्मट ने इस प्रकार बताया है :-

''यस्य प्रतीतिमाधातुं लक्षणा समुपास्यते।
फले शब्दैगम्येऽत्र व्यंजनान्नापरा क्रिया।।''[10]

जिस प्रयोजन की प्रतीति को उत्पन्न करने के लिए लक्षणा का आश्रय लिया जाता है, इस फल प्रतीति में जो कि एक मात्र लाक्षणिक शब्द का ही विषय है, व्यंजना के अतिरिक्त कोई अन्य व्यापार नहीं है।

यह व्यंजना शाब्दी तथा आर्थी दो प्रकार की होती है। शाब्दी व्यंजना भी दो प्रकार की है- अभिधामूला तथा लक्षणामूला। यद्यपि अभिधा मुख्यवृत्ति है, लक्षणा का भी वह आश्रय है। अतः पहिले अभिधामला व्यंजना का विवेचन करना चाहिए। तथापि तत्र 'व्यापारो व्यंजनात्मकः इत्यादि द्वारा ग्रन्थाकार प्रथमतः लक्षणामूला व्यंजना का प्रतिपादन करते हैं। इसका कारण है- (1) लक्षणामूला व्यंजना अधिक प्रसिद्ध है, (2) यहाँ लक्षण का प्रसंग चला रहा है तथा (3) प्रयोजन की प्रतीति कैसे होती है, यह जाने बिना सव्यङ्ग्या याप्रयोजनवती लक्षण का विवेचन पूर्ण नहीं होता। 'यस्य' इत्यादि भाव यह है कि ''गंगायां घोषः'' इत्यादि में लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग इस हेतु किया जाता है कि उनसे शीतत्वपावनत्वादि किसी प्रयोजन की प्रतीति हो सके। यह प्रयोजन कही गुढव्यङ्ग्य के रूप में तथा कही अगूढ़व्यङ्ग्य के रूप में प्रकट होता है। किन्तु इसकी लाक्षणिक शब्द द्वारा ही सर्वत्र प्रतीति होती है। अतः लक्षणामूलक व्यंजना की स्वीकृति अनिवार्य हैं।

यह लाक्षणिक शब्द व्यंजना नामक व्यापार द्वारा ही प्रयोजन या फल की प्रतीति करता है, अतः लक्षणामूलक व्यंजना की स्वीकृति अनिवार्य है।

इस प्रकार अभिधा शब्द की स्वतंत्र वृत्ति है, यह अन्यवृत्ति पर आश्रित नहीं। लक्षणावृत्ति अभिधा पर आश्रित है, वह मुख्यार्थ-बाध आदि हेतुओं पर आधारित है। साथ ही रूढ़ि लक्षण तो व्यंजना के बिना हो सकती है, किन्तु प्रयोजनवती लक्षणा में व्यंजना का व्यापार भी अनिवार्य है। शाब्दी व्यंजना अभिधा या लक्षण पर आश्रित रहती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. काव्यांग पारिजात-पृ. 28
2. आचार्य मम्मट कृत काव्य प्रकाश पृ. 18
3. ''तात्पर्याऽर्थोऽपि केषुचित्'' काव्यप्रकाश मम्मटाचार्य, पृ. 34-35
4. मुक्तावली शब्द खण्ड-''वीची तंरग न्यायेन तदुत्पत्तिस्तु कीर्तिता।''
5. मम्मटकृत-काव्यप्रकाश-द्वितीय उल्लासः
6. साहित्यदर्पणः द्वितीय परिच्छेदः
   ''तत्र सांकेतितार्थस्य बोधनादग्रिमाभिधा।
   संकेतो गृह्यते जातौ गुणद्रव्य क्रियासु च।।
7. मम्मटार्चाय प्रणीतम् काव्यप्रकाश-द्वितीय उल्लासः, पृ.53
8. मम्मटकृत काव्यप्रकाशः, पृ. 54 द्वितीय उल्लासः साहित्यदर्पण
9. मम्मट कृत-काव्यप्रकाशः द्वितीय उल्लासः
   मम्मटकृत-काव्यप्रकाशः द्वितीय उल्लासः